

Approved by UGC
Journal No. : 63580
Regd. No. 21747

Indexed : IIJIF, I2OR & SJIF
IIJ Impact Factor : 2.471
ISSN 2277-2014

Research Discourse

An International Peer-reviewed Refereed Research Journal

Vol. X

No. II

April-June 2020



Editor in Chief

Dr. Anish Kumar Verma

Associate Editors

Dr. Rakesh Kumar Maurya

Dr. Santosh Kumar Tripathi

Dr. Purusottam Lal Vijay



International
Innovative Journal
Impact Factor (IIJIF)



Scientific Journal Impact Factor

♦ महामारत कथा के रूपान्तर की परम्परा : विष्णुदास कृत-पांडव चरित्र पूजा सिंह	107-110
♦ सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ एवं उनका समाधान डॉ० सुनीता गुप्ता व डॉ० सुशील कुमार गुप्ता	111-113
♦ इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में सत्ता का वर्चस्व और प्रभाव राखी देवी व प्रो० चन्दा बैन	114-117
♦ कुबेरनाथ राय के ललित निबन्धों में सौन्दर्य वीरेन्द्र कुमार दूबे	118-121
♦ दलित साहित्य और अम्बेडकरवाद विभा सोनकर	122-124
♦ धर्मसूत्रों की दृष्टि से कल्याणकारी राज्योत्पत्ति की अवधारणा का मूल्यांकन डॉ० सर्वेश कुमार	125-126
♦ पर्यावरण के पक्षधर आदिवासी डॉ० मधुमिता भट्टाचार्य	127-128
♦ भारतीय जनजातियाँ : परिचय एवं जननांकीय विश्लेषण (Indian Tribals: Introduction and Demographic Analysis) चन्द्र प्रकाश मौर्य	129-132
♦ अमरकान्त के उपन्यासों में निम्न मध्यमवर्गीय समाज की दुर्दशा के प्रतीकात्मक चित्र डॉ० सुरभि शुक्ला	133-134
♦ आचार्य रजनीश के शैक्षिक विचार अजय कुमार सिंह	135-137



इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में सत्ता का वर्चस्व और प्रभाव राखी देवी* व प्रो० चन्दा बैन**

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर- 470003 (म.प्र.)

**हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर- 470003 (म.प्र.)

सारांश : हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा बहुत ही रोचक और लोकप्रिय माना जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें व्यक्ति, समाज या विषयवस्तु का लगभग सम्पूर्ण चित्र दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी में पुरुष और महिला रचनाकारों ने अपनी लेखनी से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि अनेक पहलुओं पर सत्ता के नैतिक और अनैतिक अधिकारों को उपन्यास के माध्यम से बखूबी रेखांकित किया है। सत्ता विमर्श आज अधुनातन कथा साहित्य का अनिवार्य विमर्श है। इसलिए यह सदी, साहित्य और मानव दोनों के लिए अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा रही है। जहाँ आज सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक रूप से समाज में सांस्कृतिक अवमूल्यन एवं परिवर्तन का रूप में दिखाई दे रहा है, वहीं दूसरी ओर विश्व सांस्कृतिक के विस्तार एवं भूगण्टलीकरण का प्रभाव और बदलाव भी कम नहीं है।

भारतीय भूमि और यहाँ का जनजीवन विविधताओं से भरा हुआ है। इन विविधताओं का चित्रण साहित्य में स्पष्टतः दिखाई देता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' इस दृष्टि से किसी भी रचनाकार की रचना में उस काल के सभी सामाजिक पहलुओं, सांस्कृतिक और सिद्धांतों का समावेश होता है। साहित्य समाज के यथार्थ का बोध कराता है। उपन्यास के माध्यम से रचनाकार अपने युग तथा विशिष्ट काल खंड को विभिन्न चरित्रों, घटनाओं आदि के संयोजन द्वारा उनकी वास्तविक परिस्थितियों में समग्रता के साथ अभिव्यक्त करता है, जिसमें वैयक्तिक अनुभव सामाजिकता के साथ सूक्ष्मताओं में उपस्थित रहते हैं। इसका विषय और उद्देश्य परिवेश के अनुसार लेखकीय दृष्टि के अनुरूप बदलता रहता है। इसी का परिणाम है कि सत्ता के वर्चस्व और प्रभाव को इक्कीसवीं के अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इन उपन्यासकारों में प्रमुख रूप से भगवानदास मोरवाल कृत 'बाबल तेरा देश में' एवं 'रेत', मिथिलेश्वर कृत 'सुरंग में सुबह', राकेश कुमार सिंह कृत 'पठार पर कोहरा' एवं 'इतिहास में नहीं है जो', अलका सरावगी कृत 'कोई बात नहीं', अनामिका कृत 'दस द्वारे का पिंजरा' असागर वजाहत कृत 'कैसी आग लगाई', मंजूर एहतेशाम कृत 'वशाहत मंजिल', रवीन्द्र वर्मा कृत 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगा', क्षमाकौल कृत 'दर्दपुर', कामतानाथ कृत 'पिघलेगी बर्फ', दुधनाथ सिंह कृत 'आखिरी कलाम', अब्दुल बिसमिल्लाह कृत 'अपवित्र आख्यान', अजय नवारिया कृत 'उधर के लोग', मधु कांकरिया कृत 'सेज पर सांस्कृतिक', रणेन्द्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता', प्रदीप सौरभ कृत 'मुन्नी मोबाइल' और कमल कुमार कृत 'मैं घूमर नाचूँ' इत्यादि हैं, जिसमें सत्ता के विविध स्वरूपों के यथार्थ को दर्शाया गया है।

इक्कीसवीं सदी का उपन्यासकार हिन्दी साहित्य का उपन्यास लिखते समय केन्द्रिय पात्रों को सामाजिक सरोकार से जोड़कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। इससे उपन्यास का मूल अर्थ सामान्य जन तक सहज ही पहुँच जाता है। इसकी की रीति-नीति परम्परागत लेखन से बिल्कुल अलग है। इसमें सामाजिक ताने-बाने के सभी तत्व विद्यमान हैं। आधुनिक युगीन समाज में सदियों व्याप्त परम्परागत एवं रूढ़िवादी सत्ताई वर्चस्व से संघर्ष करते दिखाई देता है। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों ही सामाजिक विसंगतियों से संघर्ष और प्रतिरोध करते हैं। सत्ता के द्वारा प्राप्त अधिकार, असमानता, भ्रष्टाचार, अवसर की असमानता, धर्म, जात-पात, अपहरण, बेरोजगारी और सगसगयिक आदि मुद्दों के बारे में उपन्यासों के माध्यम से रेखांकित किया गया है। इस सदी के उपन्यासकारों ने उपन्यास की पुरानी परिपाटी से अलग होकर साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। इसी का परिणाम है इस सदी में उपन्यासों महत्ता और तेजी से बढ़ती जा रही है। भारतीय समाज सदियों से पुरुष प्रधान समाज बना हुआ है। समाज में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व का हमारी सांस्कृतिक मान्यताएं, रूढ़ियाँ, परम्पराएं और रीति-रिवाज विरोध करते हैं। इसलिए सदैव से ही स्त्रियों को पुरुषों द्वारा दबाया गया और निरन्तर उनका शोषण किया जाता रहा। आजादी के बाद नारी को पुरुषों के बंधन से मुक्त करने के लिए अनेक कानूनी अधिकार दिए गए, परन्तु महिलाओं में शिक्षा की कमी के कारण वे अपने इन अधिकारों के बारे में अधिक जागरूक नहीं हैं। सत्ता के अधिकारों से लड़ने के लिए शहर की महिलाओं ग्रामीण महिलाओं से अधिक मुखर हैं। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार में आज तक कोई विशेष कमी नहीं आयी है। सत्ताई शोषण का यह सिलसिला इक्कीसवीं सदी के आधुनिक समाज में भी समाप्त नहीं हुआ है। आज शहर हो या गाँव सभी अंचलों में स्त्रियों के ऊपर अनैतिक शोषण का स्वरूप बढ़ता जा रहा है। सामाजिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान आदि उनके गले की फाँस बने हुए हैं।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में सत्ता के प्रभाव और वर्चस्व की पूरी झलक साफ-साफ दिखाई देती है। भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'बाबल तेरा देश में' की शकीला, शगुफता, जैनव, मैना बुंदेलखण्ड की बेटनी जाति से सम्बन्धित स्त्रियों के लिए गाँव, परिवार के आदरखोर भेड़ियों जैसे पुरुषों से अपने आप को बचाए रखना मुश्किल हो गया। वे इनकी ताक में कहीं न कहीं घात लगाए बैठे रहते हैं। जब रक्षक ही भक्षक हो तो वे किससे अपनी सुरक्षा की गुहार करें। वैश्वीकरण के इस युग में भी महिलाओं लिए अकेले घर से निकालना मुश्किल है। हमारे धर्म, ग्रंथ, परम्पराएँ और रीति-रिवाज उनके पैरों की जंजीर बने हुए हैं। धर्म और रीति-रिवाज की इस जंजीर पर तीखी आलोचना करते हुए कर्मेन्दु शिशिर कहते हैं कि, "धर्म जब तक मनुष्य और समाज से लगा रहेगा, उसकी

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में सत्ता का वर्चस्व और प्रभाव

उपेक्षा कर न तो बेहतर समाज की कल्पना की जा सकती है और न आधुनिक। वह मनुष्य की एक संपूर्ण भूख रही है और किसी-न-किसी रूप में यह इसकी आपूर्ति चाहेगा।”

‘बाबल तेरा देस में’ भगवानदास मोरवाल का स्त्री आख्यान का अनूठा उपन्यास है। इसमें स्त्री के उन दुखों का जिरह है, जो अपने ही घर के असुरक्षित, अमेद किले में कैद हैं। इस कैद में वह कहीं पिता, तो कहीं भाई, तो कहीं पति एवं ससुर आदि रिश्तों से सत्ताई आदेशों से आहत हो रही है। इस उपन्यास में इसी किले की पितृसत्तात्मक ईंट-गारे से बनी मजबूत दीवारों के बीच पात्रों का मौन प्रतिवाद है। यह ऐसे जीवन्त-समाज का आख्यान है, जिसमें स्त्रियों की मुक्ति और निजता की किरसागोई है, जो यह दर्शाता है कि धर्म, ग्रंथ, परम्पराएं और रीति-रिवाज तो उनके पैरों में बंधी बेड़ियों के समान हैं। मुसलमान औरतें अपने धर्म ग्रंथ के कारण ही दुःख झेलने को मजबूर हैं। इसका प्रमाण हमें धनसिंह के इस कथन से मिलता है, “इतना आसान ना है रामचंद्र अरे, तोहे तो सब मालूम है कि रीति-रिवाज, धर्म-कर्म, विरादरी और कौम भी कोई चीज होबे है। बात जब घर में है चाहे जैसे मन करे सुलझा लोगे, पर देहली पर करते ही आदमी का बस सू बाहर हो जावे है। मैंने तो बहुत कोशिश करी है, पर हदीस और सरीयत के आगे एक ना चली।” इस उपन्यास में धर्म-कर्म, रीति-रिवाज की सत्ता लोगों पर इस कदर हावी है कि वे महिलाओं पर निरन्तर जुल्म और शोषण कर रहे हैं। स्त्रियों के शोषण का असली कारण नसीब खान स्वीकार करता है, “एक बात और बता दूँ के हमारा जितना भी धर्मग्रंथ है, उनको सहारा लेकर सबसे ज्यादा जुल्म भी औरत जात पे ही हुआ है।”

आज समाज में महिलाओं की दुर्दशा का कारण पुरुष समाज द्वारा उनकी अनदेखी है। पुरुष जानता है कि यदि महिलाओं को पूर्ण शिक्षा, समानता, स्वाधीनता, रोजगार प्रदान कर दिया गया तो उनके वर्चस्व के प्रभाव और परिणाम को पुरुषों को ही सहना पड़ेगा। इसी समाज में कुछ ऐसी जागरूक स्त्रियाँ भी हैं जिनको लगता है कि उनकी प्रताड़ना का कारण उनका अशिक्षा है। यदि वे अपने प्रयास से गाँव की अन्य लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास करती हैं तो उन्हें अपने ही घर के पुरुषों के कोप-भाजन का शिकार बनना पड़ता है। ‘बाबल तेरा देश में’ उपन्यास की शकीला अपने गाँव की लड़कियों, स्त्रियों को शिक्षित करने का प्रयास करती हैं, परंतु इनके इस कार्य में सत्ताधारी पुरुषों द्वारा हरसंभव विघ्न डालने की कोशिश की जाती है।

इस सदी के उपन्यासकारों ने स्त्रियों के ऊपर सत्ता के प्रभाव और उसके सकारात्मक और नकारात्मक परिणामों को यथार्थ रूप में प्रकट किया है। इन उपन्यासों में अनेक स्त्रियाँ अपने शोषण के विरुद्ध लड़ती नजर आ रही हैं। ‘रेत’ उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने सत्ता के प्रशासनिक रूप के माध्यम से स्त्रियों के ऊपर होने वाले स्वरूप दिखाते हैं। उपन्यास में पुलिस और कंजरो की मिली-भगत से स्त्रियों के ऊपर होने वाले सत्ताई शोषण का दृश्य ‘हवलदार साब और वो भी तो खिलावदी हैं गाजूकी में। रजनी, नीलग... एक से बढ़के एक। इनमें जो मन करे छांट लें। कमला को मत्था दकाई तक छोड़ दे बस्स। दीना की सौ पीछे मैं अपने आप छोड़ जाऊँगी। फिर तेरा साब इसे चाहे जितने दिन रख ले अपने पास, बस्स थोड़ा सा लालच मत्था दकाई का है...मिल जाएंगे। किसी इज्जतदास से दो-ढाई सौ...यही तो बचत है।”

किरी भी युग में सत्ता के प्रभाव और वर्चस्व की छवि तत्कालीन समाज में सहज ही देखी जा सकती है। भारतीय समाज में पुरुष और नारी दोनों का महत्वपूर्ण और समान अधिकार है। इन दोनों को गाढ़ी के दो पहियों के समान माना गया है। यानी एक-दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं। लेकिन सत्ता के प्रभाव और वर्चस्व ने दोनों के अधिकारों के बीच दरार पैदा कर दी है। समाज में स्त्री-पुरुष के अधिकारों और स्वतंत्रता को लेकर लम्बे समय से संघर्ष चल रहा है। परन्तु यह स्थिति आधुनिक सदी में भी परिवर्तित नहीं हुई है। आज हम भूमण्डलीकरण के युग में जीवन जी रहे हैं। हमारे समाज और जीवन शैली में बदलाव होनी चाहिए थे, पर परिणाम अधिक सकारात्मक नहीं हैं। इसका प्रामाणिक दस्तावेज यह है कि हमारे समाज की स्त्रियों के शारीरिक शोषण की कहानी इस सदी के उपन्यासों में प्रमुखता से अभिव्यक्त की गई है। आज भी घर की बहुएं अपने परिवार पति, ससुर, देवर और अन्य सम्बन्धियों से सत्ताई जाती हैं और कहीं-कहीं पति की मौत के बाद उसका जेठ एवं देवर उसे अपनी हयस का शिकार बनाते हैं जिससे उसका पूरा भविष्य ही अंधेरे में डूब जाता है। लगभग सभी उपन्यासों की स्त्रियाँ सामाजिक सत्ता के प्रभाव से कहीं-न-कहीं इसी तरह का शोषण झेलने को मजबूर हैं, जिससे उनकी संपूर्ण जिंदगी ही संघर्ष में गुजर जाती है और आजीवन वह इस मुसीबत से बाहर नहीं आ पाती।

‘सुरंग में सुबह’ मिथिलेश्वर का राजनीतिक सच को उजागर करने वाला उपन्यास है। यह प्रभु वर्ग के राजनीतिक पाखण्ड तथा निम्न वर्ग के अंधविश्वास से एक साथ जुझता है। उपन्यास में राजनीतिक सत्ता के माध्यम से सर्वोच्च पद पाने के लिए जिन अनैतिक साधनों का इस्तेमाल किया जाता है, वह दहला देता है और भारतीय राजनीति के विकृत चरित्र को उजागर करता है। इसमें सामाजिक बदलाव और सामान्य जनता की आकांक्षाओं, उम्मीदों और अन्तर्विरोध को रेखांकित किया गया है। उदाहरण स्वरूप, ‘नेताजी का आदेश पाते ही जनार्दन तत्क्षण तैयार होने चल पड़ा। नन्दिता ने शायद ऐसे ही अवसरों के लिए उसे अच्छे कपड़े बनवाए थे। तैयार होकर जब उसने आईना देख तो इस बेहतर लिबास में अपनी आकृति उसे खुद बदली-बदली जान पड़ी। उसे ऐसा लगा, जैसे अब वह गाँव से आया कोई लड़का नहीं, सयाना युवक है। अपने चेहरे-मोहरे पर उसने युवाओं जैसी सख्ती का अनुभव भी किया। नन्दिता के बदन के संग-साथ और नेताजी द्वारा प्रदत्त उत्तरदायित्व ने अचानक उसे सयानेपन से लबरेज कर दिया था। सीना तान कर और अपनी भुजाओं को फैलाकर उसने अनुभव किया, अब किसी की मजाल जो उसके नेताजी को कुछ कर सके।”

‘पठार पर कोहरा’ में राकेश कुमार सिंह समाज और प्रकृति दोनों के प्रति विंचित दिखाई देते हैं। वे समाज के उत्थान के साथ मानवीय उत्थान पर भी जोर देते हैं। “पर्यावरण के साथ जुड़ा है यह सांस्कृतिक क्षरण भी। सांस्कृतिक विखण्डन होने लगे तो जनजातियों की मौलिक संस्कृति में बाहरी संस्कृतियों का घालमेल होने लगा। ऐसी परम्पराएं जो जीवन की जरूरतों से जन्मी थीं, आवश्यकताओं की पूर्ति के दैकल्पिक साधन उपलब्ध होते ही मरती गयीं।” इसी प्रकार समाज में व्याप्त रीति-रिवाज के असल मर्म

को भी रेखांकित करते हुए वे आगे लिखते हैं कि "क्रिस्तान बनते ही बाबू जो गये हैं बनासकांठा के मुण्डा। अभी पुराने रीति-रिवाज एकदम धोकर पी नहीं गये सो मुण्डा भाइयों के साथ रोटी-बेटी का नाता चल रहा है। पर वे रीति-रिवाज धीरे-धीरे छोड़ना शुरू कर चुके हैं। यहाँ तक कि सिंगबोंगा को भी भूल रहे हैं जो मुण्डा लोगों का सबसे बड़ा देवता है।"¹⁷

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में समाज में धर्म की सत्ता और उसकी कूटनीति पर सवाल खड़ा करते हुए कहते हैं कि, "भारत में ईसाई मिशनरियों ने यहाँ के आदिवासियों को दया पात्र माना भी तो आदिवासियों को सम्य बनाने की भी शर्त रखी गयी—धर्मान्तरण। यही विद्रोही आदिवासी समाज और अंग्रेजी सत्ता की बीच दोत्य सम्बन्ध बनाने की कूटनीति भी थी।"¹⁸ आदिवासी समाज बड़े से बड़ा दुख हो या सुख, सर्वशक्तिमान ईश्वर का प्रसाद मानकर हर दुख-सुख के पार उतरते हैं। इनका यथार्थ भले ही कुछ और हो। सत्ता ने सारे मायने बदल दिये हैं। जिन वनवासियों का जंगल से सब कुछ था यानी वे जंगल में रहते थे, जंगल से खाते थे और जंगली समाज ही उनकी संस्कृति थी। अब वे सत्ता के वर्चस्व और प्रभाव से अपने स्वतंत्र अधिकारों से वंचित हो रहे हैं। "जनीशिकार कभी जंगल में होता था। घने जंगलों में घस पड़ती थी शिकारियों, परन्तु अब जमींदारों ने अंग्रेज वनाधिकारियों के साथ साठ-गांठ कर जंगल में आदिवासियों के प्रवेश, आखेट एवं वनोपज एकत्र करने के आदिम अधिकारों पर पहरे बिठा दिये तो 'जनीशिकार' की परम्परा ही खतरे में पड़ गयी।"¹⁹ रणेंद्र ने 'ग्लोबल गांव के देवता' के माध्यम से झारखण्ड के असुर जनजाति के संकटग्रस्त जीवन का चित्रण किया है। अविकसित क्षेत्रों को विकसित बनाने के घोखे में विकास के अग्रदूतों ने जिस तरह से आदिवासियों के जंगल, जमीन व उनकी पारंपरिक रोटी-रोजी को छीना है, इसका जीवन्त उदाहरण 'ग्लोबल गांव के देवता' में बखूबी देखा जा सकता है। ग्लोबल देवताओं की मिली-भगत से आज आदिवासी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ हैं। इन्हीं सब विसंगतियों को विषय वस्तु बनाकर रणेंद्र ने 'ग्लोबल गांव के देवता' की रचना की है। मूलरूप से यह उपन्यास भौरांपाट नामक पठारी इलाके में बसे असुर जाति के आदिवासियों के भयावह शोषण और उससे उपजी कुंठा एवं निराशा का सार भर नहीं बल्कि इस समाज में आ रही शिक्षा की नई हवा और उसके फलस्वरूप संघर्षशील अस्तित्ववादी चेतना की संपूर्ण दास्तान है।

इस उपन्यास में आदिवासियों पर नक्सली केस लगाने पर रुमझनू द्वारा प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर कहता है कि, "हम बहुत डरे हुए हैं। हम खत्म नहीं होना चाहते। भेड़िये पर अन्याय से कीमती भेड़िये जरूर बच जायेंगे श्रीमान्। किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जायेगी।"²⁰ वे आगे कहते हैं कि जिस घर में मजदूरी करने वाले हाथ हैं वे तो मजदूरी करके अपना पेट भर लेते हैं किन्तु जिस घर में काम करने वाले लोग नहीं हैं उन असहाय गरीबों को पेट तो जंगल ही भरता है। इन गरीबों की बहु-बेटियों के सामाजिक दृश्य को उजागर करते हुए समाज के दलाल सत्ता के वर्चस्व और प्रभाव से अपने आपको पूरे समाज का स्वामी मानते हैं। लेखक ने लालचन दा सिंह के माध्यम से सब्वाई को दिखाने का प्रयास करता है। "उसके हरामी दलाल घर-घर सूंघा करते हैं। कोई बाहरी जन दलाल थोड़े ही थे। यही रामचन जैसे घरे-गाँव के आदमी दलाली करते हैं। कच्ची उग्र की लड़कीमन को फुसलाना। दिल्ली-कलकत्ता राज बाग दिखाना। जिस घर में मर्द-औरत में नहीं पट रही हो, उस घर की औरत को फुसलाना। खरीफ कटनी के बाद का हाट-बाजार ऐसे दलालों से भरा रहता था। यों तो नीचे लोचमा की पाँच लड़कियों में से एक आठवीं पास थी। उसने जैसे-तैसे पोस्टकार्ड भेजा। हाट के दिन डाकिये ने डॉक्टर साहब के हाथों में वह पोस्टकार्ड थमाया, तो पता चला क्या-क्या अत्याचार सहती हैं हमारी बेटियाँ। न जाने दिल्ली के कौन से मुहल्ले की मालिशवाली दुकानदारिन के हाथों में बेची गयी थी।"²¹

रणेंद्र ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आदिवासी क्षेत्रों के खनिजों, प्राकृतिक स्रोतों का दोहन करने वालों की मनोदशा पर वाजिब टिप्पणी की है, "सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज संपदा जंगल व अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि अरे इन पर तो हमारा हक है। इन खनिजों पर, जंगलों में घूमते हुए लंगोट पहने असुर, बिरजिया, उराव मुंडा आदिवासी दलित, सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोत होती है वे इन कीड़ों-मकौड़ों से जल्द निजात पाना चाहते हैं तब इन इलाकों में झाड़ू लगाने का काम शुरू होता है।"²² गरीबी के कारण इन जातियों का शारीरिक मानसिक और आर्थिक शोषण इन ग्लोबल गाँव के देवताओं द्वारा होता रहता है। रणेंद्र ने असुर जाति के इस शोषण की कथा को सबालों के माध्यम से उठाया है।

'कैसी आग लगाई' में असगर वजाहत ने सत्ता के वर्चस्व और प्रभाव से मानवीय मूल्यों में आयी गिरावट को रेखांकित करते हैं। वे कहते हैं कि "मनुष्य का जीवन जितना मूल्यवान हुआ है, सत्ता जैसा नंगा निर्मम नाच दिखा रही है, मूल्यहीनता की जो स्थिति है, स्वार्थ साधने की जो पराकाष्ठा है, हिंसा और अपराध को जो बोलबाला है, सत्ता और धन के लिए कुछ भी कर देने की होड़, असहिष्णुता और दूसरे को अपमानित करने का भाव जो आज हमारे समाज में है, वह पहले नहीं था।"²³ दूधनाथ सिंह ने 'आखिरी कलाम' में समाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि, "दुनिया के सारे साहित्य सामान्य रूप से इसी तत्ववाद के ऐतिहासिक आख्यान हैं। क्योंकि मनुष्य कमजोर है, डरा हुआ है। वह किसी के कल-बल-छल से अपने इस डर को भगाना चाहता है। किसी भी झूठ से, किसी भी असात-अतर्क्य से। कैसे भी, क्योंकि वह अपना चैन नहीं खोना चाहता है।"²⁴

इक्कीसवीं सदी में स्त्री उपन्यास लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों द्वारा जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे बहुत अधिक प्रभावशाली और सजीव हैं। जिंदगी की निजी घटनाओं का सटीक वर्णन जितना महिला लेखन में दिखाई देता है, उतना पुरुष लेखन में नहीं। स्त्री यथार्थ उसका अपना है, यहीं उसके अस्तित्व की सामाजिक सांस्कृतिक सच्चाई है। यह सच है कि स्त्री लेखन को उनके अनुभव से जोड़कर देखा जाता है। प्रमा खेतान लिखती हैं कि, "स्त्री की अपनी संस्कृति है, इतिहास में इसे गिना माना जाता रहा, लेकिन इसे अलग पहचान नहीं दी गई। चूंकि अलग से स्त्री शक्ति की सत्ता नहीं थी। इसलिए सत्ता को अलग पहचान ही नहीं मिली।" इसी प्रकार डॉ. सुधा उपाध्याय कहती हैं कि 'जब कोई स्त्री रचनाकार बिना औरतपन के दबाव को महसूस करे पुरुष सत्ता को चुनौती

देती है तब वह अनुमान से नहीं अनुभव से लड़ती है। पुरुष जब भी स्त्री यातना पर लिखता है हमदर्द बनकर, स्त्री को सबोवट बनाकर उसकी पीड़ा का अनुमान भर लगता है। परन्तु जब स्त्री रचनाकार अपना दर्द बखानने के लिए कलम चलाती है तो उसे उसके दूरगामी परिणाम भोगने पड़ते हैं। अराल में एक स्त्री वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति का जोखिम उठाती है तो कहानी की नायिका को रचनाकार से जोड़कर देखा जाता है।

‘सेज पर संस्कृत’ उपन्यास में मधु काकरिया ने स्त्री जीवन के सामाजिक विसंगतियों और उसमें व्याप्त संघर्ष को रेखांकित करती है। उपन्यास की नायिका संघमित्रा सामाजिक विसंगतियों का भरपूर प्रतिरोध इन शब्दों में करती है, “नहीं सर, मैं इस गंदगी में लोट नहीं लगा सकती। मैं इस हवा-पानी की जीव नहीं। यदि मैं आत्मविहीन हो गई, मेरा स्वाभिमान पराजित हो गया, गर्दन मरोड़ दी गई उसकी तो कितनी दूर जा पाऊँगी मैं? जब जीवन ही हाथ से निकल जाएगा तो जीविका लेकर क्या करूँगी मैं?”¹⁴ देखा जाय तो आज समाज में अपहरण और बलात्कार जैसी घटनाएँ आये दिन सुर्खियों में रहती हैं। लड़कियों का अपहरण करके उन्हें कॉलगर्ल या फिर कोठे पर बेच दिया जा रहा है। जहाँ उन्हें वेश्या बनने के लिए मजबूर किया जाता है। इस उपन्यास की स्त्री अपने को सामाजिक ताने-बाने की गुलामी से मुक्त होना चाहती है, पर वह स्वतंत्र जीवन नहीं जी पाती है। उसका कल्पना बस एक स्वप्न ही भाँति है। जीवन के यथार्थ को व्यक्त करते हुए वह कहती है कि, “देखा था मैंने बड़े-बड़े कद्दावर पेड़ों के झुरमुटों के बीच फँसे एक पेड़ को जो एक जमीन पर लगभग लेटकर सूर्य से ऊर्जा ग्रहण कर रहा था। मैंने आसू पोंछ डाले—यह आखिरी बूँद। अब मुझे अपनी भीतरी ताकतों को बटोर खुद को निराशा के पिंजरे से मुक्त करना होगा...और अपने को उस धरातल पर रखना होगा...जहाँ मैं होऊँगी, छुटकी होगी...हमारा फूलता वजूब होगा...हमारा आसमान होगा और होगा हमारे स्वप्नों का गुच्छा!”¹⁵ वास्तव में इक्कीसवीं सदी में स्त्री का पहला संकट अपनी अस्मिता को पाने प्राप्त करने का है।

निष्कर्षतः इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में सत्ता के प्रभाव और वर्चस्व से पूरे समाज और जनजीवन को प्रभावित किया है। सत्ता ने समाज के स्वतंत्र अधिकारों और संस्कृति को बदलने और उस पर अधिकार स्थापित करने की कोशिश हमेशा से की है। चाहे वह सामाजिक रूप में हो, धार्मिक रूप हो या फिर आर्थिक रूप। इस कोशिश से समाज और मानवीय मूल्यों में गिरावट आयी है। शोषण, अत्याचार, हिंसा आदि का वर्चस्व बढ़ता दिखाई दिया है। सही अर्थों में सत्ता ने पूरे समाज को बंधक बना दिया है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में जीवन के अधिकार के लिए स्त्री और प्रकृति की वेदना यथार्थ रूप में दिखाई देती है। निश्चित रूप से सत्ता के वर्चस्व और प्रभाव ने पूरे समाज को तानाशाही और हिंसक बना दिया है। समाज से समता, समानता, बन्धुत्व, परोपकार, अहिंसा, दया आदि नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है और भूमण्डलीकरण और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ा है। सही मायने में समाज में सत्ता का सबसे अधिक प्रभाव और दुष्परिणाम स्त्रियों के जन-जीवन पर पड़ा है। सत्ताई प्रभाव से स्त्रियों के साथ शोषण किया गया और उनके अधिकारों एवं अवसरों को छीना गया। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के समाज को राख्य और गानवीय बनाने के लिए सत्ता के लोकतांत्रिक और गानवीय रूप को तैयार करना होगा।

सन्दर्भ :

1. नवजागरण और संस्कृति, कर्मेन्दु शिशिर, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला, संस्करण : 2000, पृ. 16
2. बाबल तेरा देश में, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ. 441
3. वही, पृ. 492
4. रेत, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण : 2008, पृ. 56
5. सुरंग में सुबह, मिथिलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ. 41
6. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण : 2003, पृ. 198
7. वही, पृ. 73
8. जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण : 2005, पृ. 10
9. वही, पृ. 20
10. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृ. 84
11. वही, पृ. 30-31
12. वही, पृ. 93
13. कैसी आग लगाई असगर बजाहत, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, भूमिका, पृ. 9
14. आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण : 2007, पृ. 12
15. सेज पर संस्कृति, मधु काकरिया, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण : 2010, पृ. 159
16. वही, पृ. 12

